

वैदकीय धर्मशास्त्र का वैशिष्ट्य

डॉ. मिश्री लाल*

हमारी वैदिक सनातन परम्परा की मुख्य बिन्दु ऋत है, अर्थात् इसे सही, सत्य, उचित, ईमानदार, निश्चित नियम आदि अर्थों में प्रयुक्त किया गया है।¹ मोनियर विलियम्स ने अपने संस्कृत इंग्लिश कोश में ऋत का विशिष्ट अर्थ शाश्वत सत्य बताया है। इस सम्बन्ध में ऋग्वेद के दूसरे मण्डल में उल्लिखित ऋत को ही शाश्वत सत्य के रूप में ले सकते हैं। जहाँ आया है कि यह सम्पूर्ण संसार ऋत से उत्पन्न है।² वैदिक परम्परा के इसी ऋत से सदाचरण की ओर प्रवृत्ति हुई। धीरे-धीरे सदाचरण में प्रवृत्ति के लिये ही बहुत नियम बने जिसमें बताया गया कि सदाचरण से ही स्वर्ग प्राप्ति सम्भव है। सत्य ही चरित्र का श्रेष्ठतम् गुण है, जिसकी स्वीकारोक्ति ताण्डयब्राह्मण देता है—

‘ऋतेन स्वर्गलोकं गमयति।’³

ऋत (सत्य) से स्वर्गलोक का गमन होता है। इस ऋत को ही स्वर्ग प्राप्ति का साधन बताया गया है। इसीलिए वेदों में सूर्य एवं चन्द्र को सत्य का आदर्श मानकर कल्याणकारी सत पथ पर चलने की कामना की गई है। सत् आचरण सबके जीवन को निश्चित रूप से मंगलमय बनाता है। सदाचरण के लिए सबसे आवश्यक है मन का शुद्ध एवं पवित्र होना। मन में शुद्ध संकल्प तथा सत्य भावनाओं के उदय के लिए कहा गया है कि निपुण सारथी जिस प्रकार लगाम द्वारा घोड़ों को बार-बार चलने के लिए प्रेरित करता है तथा उसे नियन्त्रित करता है, उसी प्रकार मनुष्य को कर्मों में प्रवृत्त तथा नियन्त्रित करने वाला जरारहित, अत्यन्त गतिमान मेरा मन शुद्ध संकल्प वाला होए—

सुषारथिश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनश्च।

हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।⁴

सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय हमें कर्तव्य पालन की प्रेरणा देता है। सद् आचरण के बाद कर्तव्य पालन ही मानव मूल्य है। जैसा कि कठोपनिषद् में कर्तव्य पालन की ओर प्रवृत्त करते हुए कहा गया है—

‘उतिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निवोधत

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया

दूर्ग पथस्तत्कवयो वदन्ति।’⁵

*एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज, वाराणसी (उ.प्र.)

अर्थात् हे मनुष्यों उठो, जागो, श्रेष्ठ पुरुषों के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो। छूरे की तेज की गई दुस्तर धार की भाँति वह ज्ञान मार्ग दुर्लभ है, ऐसा मेधावी लोग कहते हैं। वेदों में त्याग की परम्परा भी गहरी जमी हुई है। भारतीय जीवन प्रणाली में त्याग का विशेष महत्त्व बताया गया है। यही तो जीवन को नियमित एवं संयमित बनाता है। वैदकीय धर्मशास्त्र सदैव से ही मनुष्यों को प्रेरित करते चला आ रहा है। ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है—

‘ऊँ इशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चजगत्यां जगत्

तेन व्यक्तेन युञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।’⁶

अर्थात् उस ईश्वर के द्वारा प्रदत्त पदार्थों का त्यागपूर्वक जीवन निर्वाह के लिए भोग करो। किसी के धन की इच्छा मत करो। त्याग ही मानव का सबसे बड़ा धर्म है। धर्म हमें इस प्रकार पोषित करता है जिस प्रकार माँ अपने बालक को पोषित करती है। वैदिक नियम धीरे-धीरे धर्म बन गये। धर्म बहुत व्यापक शब्द है जिसके अंतर्गत वे सभी समाहित हो जाते हैं, इसी धर्म से ही मनुष्य पोषित होता है। इसी से वह रक्षित एवं सुरक्षित होता है। इसी अर्थ में धारणात् धर्मः परिभाषित किया जाता है। इस सम्बन्ध में धर्म की कतिपय मनोरम परिभाषाओं की ओर संकेत करना अपेक्षित हो जाता है। पूर्व मीमांसा सूत्र में जैमिनि ने धर्म को वेद विहित प्रेरक लक्षणों के अर्थ में स्वीकार किया है। अर्थात् वेदों में प्रयुक्त अनुशासनों के अनुसार चलना ही धर्म है। धर्म का सम्बन्ध उन क्रिया संस्कारों से है, जिनसे आनन्द मिलता है और जो वेदों द्वारा प्रेरित एवं प्रशंसित हैं—

‘चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः’⁷

वैशेषिक सूत्रकार ने धर्म विषय में कहा है—

‘यतोऽभ्युदयानिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः’⁸

अर्थात् अब मैं धर्म की व्याख्या करता हूँ कि धर्म वही है जिससे आनन्द एवं निःश्रेयस् की सिद्धि हो। इसी प्रकार धर्म के विषय में अन्य परिभाषाएँ भी प्राप्त होती हैं। यथा—

‘अहिंसा परमोधर्मः’ (महाभारत अनुशासन पर्व 151-1)

‘आनृशंस्य परो धर्मः’ (महाभारत वन पर्व 373-76)

‘आचारः परमो धर्मः’ (मनुस्मृति 1/108)

आदि अनेक धर्म की परिभाषाएँ दी गई हैं। धर्म सूत्रों में भी धर्म को व्यापक रूप से परिभाषित किया गया है। गौतम धर्म सूत्र के अनुसार वेद धर्म का मूल है—

‘वेदोधर्ममूलम्। तद्विदां च स्मृतिशीले।’⁹

जो धर्मज्ञ है जो वेदों को जानता है उसका मत ही धर्म प्रमाण है ऐसा अपस्तम्ब का भी कथन है।¹⁰ आचार्य मनु धर्म के पाँच उपादान मानते हुए लिखते हैं—

‘वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।

आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च।।’¹¹

अर्थात् वेद, स्मृति (परम्परा से चला आया हुआ ज्ञान) सदाचार, जो अपने को प्रिय लगे तथा उचित संकल्प से उत्पन्न अभिकांक्षा या इच्छा ये ही परम्परा से चले आये हुए धर्मोपादान हैं। उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि धर्म के मूल उपादान वेद ही हैं। स्मृतियों तथा परम्परा से चला आया हुआ यह एक शिष्टाचार है।¹² वेदों में स्पष्ट रूप से धर्म विषयक विधियों का प्रतिपादन नहीं किया गया है परन्तु उनमें प्रासंगिक निर्देश अवश्य पाये जाते हैं। जो कालान्तर में धर्मशास्त्र सम्बन्धी प्रकरणों की ओर संकेत भी करते हैं। वेदों में ऐसे अनेक स्थल प्राप्त हैं जहाँ विवाह, विवाह के प्रकार, पुत्र, गोद लेना, सम्पत्ति का बटवारा, रिक्थ लाभ (वसीयत) श्राद्ध, स्त्रीधन जैसी व्यवस्थाओं पर प्रकाश डाला गया है। अथर्ववेद का पूरा 14वाँ काण्ड विवाहसूक्त के नाम से जाना जाता है। इनमें 2 सूक्त और 139 मंत्र हैं। जिसमें विवाह संस्कार की विधियाँ, पति-पत्नी के कर्तव्य, विवाह सम्बन्ध का अविच्छेद होना, पतिव्रता-धर्म, पत्नी के अधिकार और कर्तव्य आदि का विस्तृत विवेचन है।¹³ ऋग्वेद के संज्ञान सूक्त के चार मंत्रों में सामाजिक सौहार्द, सामंजस्य, सह-अस्तित्व, एकमल्य और संगठन का उपदेश देता है।¹⁴ ऋग्वेद में ही दान का भी गुणगान किया गया है।¹⁵ अथर्ववेद धर्मशास्त्रीय विषयों के प्रतिपादन में अपना विशिष्ट स्थान रखता है— यहाँ राजा के कर्तव्य (4/8/2), मित्र राष्ट्र (6/88/3), ग्राम पंचायत (4/7/5), सभा और समिति (7/12/1), न्याय और दण्ड विधान (19/49/9-10), स्त्रीधन (20/126/9), ब्रह्मचारी के कर्तव्य (5/17, 11/5), कृषि (3/17/1-9), स्वप्न विज्ञान (6/46, 19/57), पुनर्जन्म (9-10, 10-8), स्वर्ग (19/15), नरक (12/4), आदि धर्मशास्त्रीय विषयों का विधिवत् प्रतिपादन किया गया है। कालान्तर में ‘मनुस्मृति’ और ‘याज्ञवल्क्यस्मृति’ में इन्हीं विषयों को और विस्तार के साथ सामाजिक आवश्यकता के अनुसार प्रतिपादन किया गया।

‘तैत्तिरीयसंहिता’ में बतलाया गया है कि जब इन्द्र ने यतियों को कुत्ता खाने के लिए दिया तो प्रजापति ने उसके लिए प्रायश्चित्त का विधान किया।¹⁶ शतपथ ब्राह्मण में राजा तथा विद्वान् ब्राह्मणों को पवित्र अनुशासन पालन करने वाले (धृतव्रत) कहा है।¹⁷ तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है कि शुद्र यज्ञ के योग्य नहीं है।¹⁸ ऐतरेय ब्राह्मण का कथन है कि जब राजा या कोई अन्य योग्य गुणी अतिथि आता है तो लोग बैल या गो सम्बन्धी उपहार देते हैं।¹⁹ शतपथ ब्राह्मण ने वेदाध्ययन को यज्ञ माना है और तैत्तिरीयारण्यक ने उन पाँच यज्ञों का वर्णन किया है जिनकी चर्चा मनुस्मृति में भली प्रकार मिलती है।²⁰ ऋग्वेद में गाय, घोड़ा, सोना

तथा परिधानों के दान की प्रशंसा की गई है।²¹ इन विविध विषयों से ही ओत-प्रोत है हमारा धर्मशास्त्र।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक युग के अनन्तर धर्मसूत्रों एवं धर्मशास्त्रों की जो विधियाँ एवं व्यवस्थाएँ बतलायी गई हैं। उनका मूल आधार हमारा वैदिक साहित्य ही है। वैदिक साहित्य ही धर्मशास्त्र की उद्गम भूमि है। धर्मशास्त्रों ने वेद को जो धर्म का मूल कहा है वह उचित ही है। वहाँ धर्म सम्बन्धी बातें प्रसंगतः आ गई हैं। वास्तव में धर्मशास्त्र सम्बन्धी विषयों के यथातथ्य एवं नियमनिष्ठ विवेचन के लिए हमें स्मृतियों को देखना पड़ता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि धर्म का मूल भूमि वेद है पर शाखाओं के रूप में स्मृतियाँ ही उसे व्यवहारिकता प्रदान की हुई हैं। यही धर्मशास्त्र का वैशिष्ट्य है जो व्यावहारिकता का बोध कराता है।

संदर्भ —

1. आप्टे वामन शिवराम, संस्कृत हिन्दी कोश, पृ. 223
2. ऋग्वेद, 2/25/78
3. ताण्डयब्राह्मण 18/12/19
4. शुक्ल यजुर्वेद, 74/6
5. कठोपनिषद्, 7/3/14
6. ईशावास्योपनिषद्, 1
7. पूर्वमीमांसासूत्र, 1/1/2
8. वैशेषिकसूत्र
9. गौतमधर्मसूत्र, 9/1/2
10. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1/1/1/2
11. मनुस्मृति, 2/6
12. याज्ञवल्क्यस्मृति, 1/7
13. द्विवेदी डॉ. कपिलदेव, वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, पृ.110
14. ऋग्वेद, 10/191
15. वही, 10/107, 117
16. ऐतरेयब्राह्मण, 7/28
17. शतपथ ब्राह्मण, 5/4/4/5
18. तैत्तिरीयसंहिता, 7/1/1/6
19. ऐतरेयब्राह्मण, 1/15
20. तैत्तिरीयारण्यक, 2/10/7
21. ऋग्वेद, 10/107/2

